संविधान संवाद शृंखला – 10

भारतीय संविधान

मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व

विकास संवाद

शीर्षक
भारतीय संविधान
मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व
(संविधान संवाद शृंखला - 10)

लेखक
सचिन कुमार जैन

संपादन
पूजा सिंह

संपादन सहयोग
राकेश कुमार मालवीय, रंजीत अभिज्ञान, पंकज शुक्ला

संस्करण - प्रथम

वर्ष - 2023

प्रतियां - 1000

सहयोग राशि
छात्रों के लिए - ₹ 20
नागरिकों के लिए - ₹ 25
संस्थाओं के लिए - ₹ 30

मुद्रक - अमित प्रकाशन

सज्जा - अमित सक्सेना

प्रकाशक
विकास संवाद
ए-5, आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर कॉलोनी,
बावड़िया कलां, भोपाल (म.प्र.) - 462039. फोन : 0755-4252789
ई-मेल : office@vssmp.org / www.vssmp.org
www.samvidhansamvad.org

भारतीय संविधान
मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व

आज़ादी के बाद भारत का चरित्र बेहतर बनाने और व्यवस्था को उचित आकार प्रदान करने के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की आवश्यकता थी। इन अधिकारों में सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों को मूल अधिकारों में स्थान दिया गया। यह सुनिश्चित किया गया कि राज्य नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करे। वहीं आर्थिक अधिकारों और आर्थिक लोकतंत्र की व्यवस्था राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रूप में की गयी। दूसरे शब्दों में मूल अधिकारों को सुनिश्चित करना जहां राज्य के लिए बाध्यकारी था वहीं नीति निदेशक तत्वों के मामले में राज्य को इस बात के लिए बाध्य नहीं किया गया कि वह इन नीतिगत संवैधानिक प्रावधानों का पालन अवश्य करे। यह काम उसकी सदिच्छा पर छोड़ दिया गया था। दरअसल हमारे संविधान निर्माता पुरखों का मानना था कि आर्थिक लोकतंत्र के लिए जनता सरकारों को बाध्य करे। अर्थात वह उन पर दबाव बनाए कि वे नीति निदेशक तत्वों को लागू करें। संक्षेप में कहें तो भारत के संविधान में नागरिकों के अधिकारों को दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है। भाग तीन में मूलभूत अधिकार हैं, जिनके मामले में न्यायालय का रुख किया जा सकता है (इन्हें न्याय संगत अधिकार या जस्टिसियेबल राइट्स कहा गया), जबकि भाग चार में राज्य की नीति के निदेशक तत्व (इन्हें गैर–न्याय संगत या नॉन–जस्टिसियेबल राइट्स कहा गया), जिन्हें अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। हालांकि अपेक्षा यही थी कि राज्य, समाज की बेहतरी के लिए नीति बनाने में इन्हें मूलभूत तत्व के रूप में अपनायेगा।

आजादी और मौलिक अधिकारों का संघर्ष

ब्रिटिश साम्राज्य के दौर में अधिकारों के हनन की बात करें तो ब्रिटिश सरकार ने कपास के व्यापार पर भारी शुल्क लगाया और उसके बाद भारतीय कपड़े पर भी प्रतिबंध लगा दिया ताकि ब्रिटिश कपड़ा कारोबारी मुनाफा कमा सकें। भारतीय बुनकरों और कारीगरों पर दबाव डालकर उन्हें अपना माल कम दाम पर बेचने के लिए विवश किया गया।

भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ रहे अनाज, जूट, तिलहन, मसालों आदि का निर्यात किया गया और भारत को कपड़ों का आयात करने पर विवश किया गया। किसानों को नील और अफीम की खेती पर विवश किया गया। कुल मिलाकर व्यापार और वाणिज्य में भारत की स्वतंत्रता को पूरी तरह समाप्त कर उनके जीवन जीने के अधिकार के समक्ष ही संकट खड़ा कर दिया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मानवाधिकार की मांग

भारत के संदर्भ में जब भी मानवाधिकारों की बात आती है तो उसके सूत्र 26 जनवरी 1950 को लागू संविधान के मूलभूत अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों में खोजते हैं। परंतु तथ्य यह है कि बुनियादी रूप से मानवाधिकारों की रूपरेखा तैयार करने का काम सन 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के साथ ही आरंभ हो गया था।

शुरुआत में कांग्रेस ब्रिटिश व्यवस्था में सुधार की वकालत करती थी लेकिन कांग्रेस में ऐसे लोग भी थे जो औपनिवेशिक सरकार के शोषण, लूट और अन्याय के कारण बदहाल भारत की दशा देख कर नाराज थे। कांग्रेस की मांग भी यही थी कि भारत की जनता को भी उसी तरह के अधिकार और स्वतंत्रताएं मिलें, जिस तरह ब्रिटिश जनता को ब्रिटेन में मिलती हैं।

स्वराज बिल और मौलिक अधिकारों की शुरुआत

भारत में पहली बार मूलभूत मानव अधिकारों का व्यवस्थित उल्लेख वर्ष 1895 के 'भारत का संविधान विधेयक', 1895 (स्वराज बिल) में मिलता है। यह स्पष्ट नहीं है कि इस विधेयक को किसने तैयार किया था लेकिन श्रीमती एनी बेसेंट मानती थीं कि यह दस्तावेज बाल गंगाधर तिलक के विचारों से मेल खाता था। इस विधेयक में 110 अनुच्छेद थे और अनुच्छेद 16 में मौलिक अधिकारों की विस्तृत सूची का उल्लेख मिलता है।

स्वराज बिल में मौलिक अधिकारों के प्रावधान

- लोकहित के विषय के अलावा कोई भी क़ानून नहीं बनाया जाएगा, अधिकृत व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी सज़ा निर्धारित नहीं करेगा, क़ानून सबके लिए समान होगा, हर व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह कार्यपालिका, न्यायपालिका या विधायिका के समक्ष किसी याचिका के माध्यम से अपनी बात/दावा प्रस्तुत कर सके ***(न्याय)***।
- हर नागरिक को भारत के राष्ट्रीय विषयों में भाग लेने का अधिकार होगा, हर नागरिक किसी भी सार्वजनिक दफ्तर में दाखिल हो सकेगा ***(सहभागिता)***।
- हर व्यक्ति को अपनी और राज्य की सुरक्षा करने के लिए हथियार रखने का अधिकार होगा ***(सुरक्षा)***।
- हर नागरिक को लिख कर, बोलकर, या अन्य तरीकों से अपनी बात को अभिव्यक्त करने का अधिकार होगा; वह किसी की मानहानि नहीं करेगा ***(अभिव्यक्ति)***।
- हर व्यक्ति को अपने घर में आश्रय लेने का अधिकार होगा, हर व्यक्ति को संपत्ति का अधिकार होगा ***(आश्रय)***।
- राज्य द्वारा दी जाने वाली शिक्षा मुफ्त होगी और प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी ***(शिक्षा का अधिकार)***।

- हर नागरिक को संसद और प्रांतीय परिषद में अपने प्रतिनिधि के चुनाव के लिए मतदान करने का अधिकार होगा ***(राजनीतिक स्वतंत्रता)***।

मौलिक/मानवाधिकारों की मांग का सिलसिला

सन 1917–1918 में देश में वैधानिक व्यवस्था और संविधान को लेकर नयी बहस आकार लेने लगी। 1917 में श्रीमती एनी बेसेंट (कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष) की अध्यक्षता वाले कलकत्ता में आयोजित 32वें कांग्रेस अधिवेशन में कुछ मांगें सामने रखी गयीं:

- हथियार रखने के लिए निर्धारित शर्तों में समानता लाई जाए।
- न्यायपालिका में ज्यूरी की सुनवाई का दायरा व्यापक बनाया जाए।
- न्यायाधीशों में आधे भारतीयों की नियुक्ति की जाए।
- भारतीयों को नागरिक अधिकार की गारंटी दी जाए।

सन 1918 में बंबई में सैय्यद हसन इमाम की अध्यक्षता वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड संवैधानिक सुधार प्रतिवेदन में शामिल करने के लिए 'भारतीय नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' पर प्रस्ताव पारित किया गया। इस घोषणा में कहा गया:

- भारत में रहने वाले सभी लोग/निवासी क़ानून के समक्ष समान हैं और डोमिनियन ऐसा कोई भी क़ानून नहीं बनायेगा, जिसके कारण भारतीयों से किसी भी तरह का भेदभाव हो ***(भेदभाव से मुक्ति और समानता का अधिकार)***।
- किसी भी भारतीय नागरिक/निवासी को स्वतंत्रता, जीवन के अधिकार, संपत्ति, संगठन, वाक–अभिव्यक्ति, लेखन की स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा; सिवाय जरूरी कानूनों के तहत अपनायी गयी पारदर्शी प्रक्रिया के ***(जीवन जीने, संगठन बनाने, संपत्ति और अभिव्यक्ति का अधिकार)***।

- भारतीयों को अपनी सुरक्षा के लिए हथियार रखने की स्वतंत्रता होगी ***(सुरक्षा)***।
- प्रेस स्वतंत्र होगी और पंजीयन के लिए किसी तरह की सुरक्षा या लाइसेंस की मांग नहीं की जायेगी ***(प्रेस की स्वतंत्रता)***।
- भारतीयों को किसी भी तरह का शारीरिक दंड नहीं दिया जाएगा, उनके साथ उसी तरह की स्थितियां अपनाई जाएं, जिस तरह की ब्रिटिश नागरिकों के साथ अपनाई जाती हैं ***(न्यायिक अधिकार)***।

सन 1925 में कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया विधेयक के माध्यम से श्रीमती एनी बेसेंट ने मानव अधिकारों की मांग को आगे बढ़ाया। उस समय तक यह माना जाने लगा था कि भारत को अपने ही बनाये संविधान से शासित होना चाहिए। अप्रैल, 1924 में राष्ट्रीय अधिवेशन (नेशनल कन्वेंशन) द्वारा कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया विधेयक तैयार किया गया। 256 सदस्यों वाले इस समूह के संयोजक तेज बहादुर सप्रू थे। इस विधेयक को एनी बेसेंट की अध्यक्षता वाली सर्वदलीय सभा की उप-समिति को सौंपा गया। इसमें मौलिक अधिकारों के रूप में सात बिंदु दर्ज थे:

1. किसी भी व्यक्ति को स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। व्यक्ति की संपत्ति में क़ानून की प्रक्रिया के अतिरिक्त कोई अनाधिकृत प्रवेश नहीं किया जाएगा, न ही कोई जब्ती होगी।
2. विवेक, व्यवसाय, धर्म की स्वतंत्रता होगी।
3. लोक व्यवस्था और नैतिकता के अधीन अपने मत को अभिव्यक्त करने और शांतिपूर्ण संगठन, प्रदर्शन की स्वतंत्रता होगी।
4. भारत में सभी व्यक्तियों को मुफ्त बुनियादी शिक्षा का अधिकार होगा।
5. सभी नागरिकों को सार्वजनिक मार्गों, न्यायालय, व्यापार के स्थानों और लोक महत्व-उपयोग के स्थानों तक जाने और उनके उपयोग का लोक व्यवस्था के तहत अधिकार होगा।

6. भारत में रहने वाले सभी नागरिक क़ानून के समक्ष समान होंगे।

7. लिंग के आधार पर किसी भी तरह की अपात्रता या बंधन निर्धारित नहीं किये जायेंगे।

संविधान का प्रारूप : नेहरू रिपोर्ट के प्रावधान

दिसम्बर 1927 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में भारत के संविधान का प्रारूप बनाने के लिए सर्व-दलीय सभा का गठन किया गया। इसमें मुस्लिम लीग भी शामिल थी। संविधान का प्रारूप बनाने के लिए मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में समिति बनायी गयी। नेहरू रिपोर्ट में 'मौलिक अधिकार' पर 19 अनुच्छेद शामिल किये गये। इनमें मुख्य थे –

- **न्याय का अधिकार**

  सरकार और सभी प्राधिकरणों (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) को भारत के लोगों से शक्तियां प्राप्त होंगी और उनका उपयोग संविधान के तहत बनाई गयी व्यवस्था के मुताबिक़ ही किया जाएगा। क़ानून के समक्ष सभी नागरिक समान होंगे और उन्हें समान नागरिक अधिकार उपलब्ध होंगे। ऐसा कोई क़ानून या नियम नहीं होगा, जो किसी भी तरह से भेदभाव वाला हो। किसी भी नागरिक को शारीरिक या यातनामूलक दंड कानूनी रूप से मान्य नहीं होगा। हर नागरिक को बंदी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार होगा। हर नागरिक को कानूनी व्यवस्था के मुताबिक़ हथियार रखने का अधिकार होगा।

- **गरिमामय जीवन का अधिकार**

  किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। सभी नागरिकों को मुफ्त बुनियादी शिक्षा पाने का अधिकार होगा। किसी भी शैक्षणिक संस्थान में जाति या वंश के आधार पर प्रवेश देने में भेदभाव नहीं किया जाएगा। स्त्री और पुरुष को समान नागरिक माना जाएगा और उनके अधिकार भी समान होंगे।

- **धर्म निरपेक्षता और समानता**

  भारत या भारत के किसी भी प्रांत का कोई राज्य धर्म (स्टेट रिलिजन) नहीं होगा। राज्य किसी धर्म विशेष या धार्मिक व्यवहारों को विशेष तवज्जो नहीं देगा। शासकीय सहायता प्राप्त स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म की कक्षा या आयोजन में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति या वंश के आधार पर सार्वजनिक रोज़गार, दफ्तर, सम्मान दिए जाने या व्यवसाय करने में पूर्वाग्रह नहीं रखा जाएगा। हर नागरिक को सार्वजनिक मार्गों, सार्वजनिक कुओं और सभी सार्वजनिक स्थानों पर जाने या उनका उपयोग करने का समान अधिकार होगा।

- **स्वतंत्रता**

  विवेक और धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता और व्यवसाय की स्वतंत्रता (लोक मानकों और नैतिकता के अधीन) संरक्षित की जायेगी। अपने विचारों को अभिव्यक्त करने और बिना हथियारों के लोक व्यवस्था के मानकों के अधीन शांतिपूर्ण संगठन बनाने का अधिकार होगा।

- **आर्थिक अधिकार**

  श्रमिकों की बेहतरी और आर्थिक उन्नति के लिए उन्हें संगठित होने/संघ बनाने का अधिकार होगा। किसी अनुबंध को बीच में ख़त्म करना या तोड़ना आपराधिक कृत्य नहीं होगा। संसद ऐसे क़ानून बनायेगी, जिनकी बदौलत काम/रोज़गार/श्रम करने के लिए सभी नागरिकों का स्वास्थ्य बेहतर हो। संसद हर कर्मकार के लिए उचित निर्वाह मजदूरी की सुरक्षा, सुरक्षित मातृत्व के लिए संरक्षण, बच्चों की खुशहाली और सुरक्षा, वृद्धों की आर्थिक स्थिति, अक्षमता और बेरोज़गारी पर क़ानून बनायेगी। इसके साथ ही संसद किराये पर कृषि जमीन लेकर खेती करने वाले किरायेदारों के लिए किराये की राशि, अवधि की सुरक्षा आदि पहलुओं पर भी क़ानून बनायेगी।

नेहरू रिपोर्ट वस्तुतः भारत के संविधान में शामिल मूलभूत अधिकारों का स्रोत साबित हुई। इसमें व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर 19 बिंदु शामिल किये गये थे, जिनमें से 10 अधिकार भारत के संविधान के तीसरे भाग (मूल अधिकार) में और तीन अधिकार चौथे भाग (नीति निदेशक तत्व) में शामिल किए गये।

व्यक्ति की आज़ादी पर भी जोर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रीय फलक पर उभार के बाद राष्ट्र की आज़ादी के साथ-साथ जिस तरह राष्ट्र के भीतर व्यक्ति की आज़ादी और गरिमा के अधिकार को ठोस ढंग से प्रस्तुत किया गया, उससे यह बार-बार स्पष्ट होता है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बाहरी उपनिवेशवाद (ब्रिटिश साम्राज्य) और भीतरी उपनिवेशवाद (गरीबी, निरक्षरता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, लैंगिक भेद और आर्थिक असमानता) दोनों पर बराबर नज़र रखे थे।

पूर्ण स्वराज का स्वप्न और मौलिक अधिकार

सन 1919 में मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड द्वारा भारत शासन अधिनियम की समीक्षा और फिर सन 1927 में साइमन कमीशन रूपी कानूनी आयोग के गठन में भारतीयों की सहभागिता के लिए कोई स्थान नहीं था। तब कांग्रेस ने अपना क़ानून (संविधान) बनाने के लिए मोतीलाल नेहरू समिति का गठन किया, लेकिन चूंकि उसमें भी 'पूर्ण स्वराज' का तत्व नहीं था और डोमिनियन स्टेटस की बात थी, इसलिए उस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं क्या गया।

मौलिक अधिकार और स्वतंत्रता की परिभाषा को और ज्यादा तराशने की प्रक्रिया भी साथ चल रही थी। ब्रिटिश शासन से आज़ादी की व्याख्या की शुरुआत ही मौलिक अधिकार पाने से होती है। 19 दिसंबर 1929 को कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जब 'पूर्ण स्वराज' का घोषणा पत्र पारित किया गया, जिसे 26 जनवरी 1930 को जारी किया गया। उस घोषणा की सबसे प्रारंभिक पंक्तियों से यह साबित हो जाता है –

> हमारा विश्वास है कि भारतीयों को भी दुनिया के अन्य लोगों की तरह स्वतंत्र जीवन जीने और अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का अधिकार है, ताकि उन्हें विकास के सभी अवसर उपलब्ध हो सकें। हम मानते हैं कि कोई भी सरकार, जो इन अधिकारों का हनन करती है और उनका शोषण करती है, लोगों के पास उसे हटा देने का अधिकार है। भारत में ब्रिटिश सरकार ने न केवल भारतीयों की स्वतंत्रता छीनी हैं बल्कि देश का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शोषण भी किया है। इस कारण भारत को पूर्ण स्वराज और स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

मूल अधिकार और आर्थिक नियोजन

मार्च 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में (जिसकी अध्यक्षता सरदार वल्लभ भाई पटेल ने की थी) पूर्ण स्वराज्य की बात दोहराते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा मौलिक अधिकारों और आर्थिक कार्यक्रम पर प्रस्ताव पारित किया गया। इसमें दो प्रस्ताव थे, एक लोगों के मौलिक अधिकारों पर और दूसरा भारत के आर्थिक कार्यक्रम पर। इन दोनों प्रस्तावों को एक साथ देखने से पता चलता है कि मूलभूत अधिकार और देश की आर्थिक योजना एक दूसरे के पूरक हैं।

मूलभूत अधिकारों में कहा गया था कि लोगों को अभिव्यक्ति व प्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता, संगठन बनाने की स्वतंत्रता, सार्वभौम व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुनावों की स्वतंत्रता, सभा व सम्मेलन आयोजित करने की स्वतंत्रता, जाति, धर्म व लिंग के आधार पर भेदभाव किये बिना कानून के समक्ष समानता, सभी धर्मों के प्रति राज्य का तटस्थ भाव, नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की गारंटी, अल्पसंख्यकों तथा विभिन्न भाषाई क्षेत्रों की संस्कृति, भाषा एवं लिपि के संरक्षण व सुरक्षा की गारंटी होगी।

जबकि राष्ट्रीय आर्थिक कार्यक्रम के प्रस्ताव में कहा गया था कि मजदूरों एवं किसानों को अपनी यूनियन बनाने की स्वतंत्रता होगी, मजदूरों के लिए बेहतर सेवा शर्तें, महिला मजदूरों की सुरक्षा तथा काम के नियमित घंटे तय होंगे, किसानों को कर्ज से राहत और सूदखोरों पर नियंत्रण होगा, अलाभकारी जोतों को लगान से मुक्ति, लगान और मालगुजारी में उचित कटौती तथा, प्रमुख उद्योगों, परिवहन और खदान को सरकारी स्वामित्व एवं नियंत्रण में रखने का वचन दिया गया। इस प्रस्ताव से पता चलता है कि सामाजिक–आर्थिक शोषण से मुक्ति ही आज़ादी की पहली सीढ़ी मानी गयी और आर्थिक आज़ादी को राजनीतिक आज़ादी के बराबर का महत्व दिया गया।

महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के बीच 24 सितम्बर 1932 को हुए पूना पैक्ट नामक राजनीतिक समझौते में वंचित तबकों का सदस्य होने के कारण चुनावों और लोक सेवाओं में नियुक्ति में होने वाले छुआछूत और भेदभाव के व्यवहार को हटाने का वादा किया गया। वंचित तबकों की शिक्षा के लिए सरकार के बजट में पर्याप्त आवंटन करने की बात कही गयी। डॉ. अम्बेडकर ने राष्ट्रवादी नेताओं को यह अहसास दिलाया कि भारत में छुआछूत, भेदभाव और अस्पृश्यता पर आधारित जातिवादी व्यवस्था को मिटाये बिना सामाजिक-आर्थिक अधिकार मिलना संभव नहीं है।

> सन 1944 में रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी के सक्रिय सदस्य एम.एन. राय ने 'स्वतंत्र भारत का संविधान' नामक एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसका पहला अध्याय था- 'अधिकारों और मौलिक सिद्धांतों का घोषणा पत्र।' इस दस्तावेज में कहा गया था कि नागरिकों में सर्वोच्च सत्ता व्याप्त है। इसका संचालन चुने हुए प्रतिनिधियों की विधायिका के माध्यम से कार्यपालिका करेगी। नागरिकों को समाज के राजनीतिक संगठन बनाने, किसी भी किस्म के शोषण और भेदभाव के खिलाफ़ विद्रोह करने, भाषा और सांस्कृतिक पहचान पर आधारित स्वायत्त भारतीय प्रांतों के संघ से भारतीय संघ का निर्माण होने, भूमि और भूमिगत संपदाएं नागरिकों की साझा-सहकारी सम्पत्ति माने जाने, श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए मशीनों और तकनीक का उपयोग करने, प्राथमिक उद्योग और क़र्ज़ की व्यवस्था राज्य के नियंत्रण में होने, बड़े उद्योग साझा नियंत्रण में होने जैसे प्रावधान थे।

दस्तावेज में मजदूरों के अधिकारों पर विशेष ध्यान देते हुए लिखा गया कि किसानों को क़ानून द्वारा तय शुल्क के आधार पर जमीन का मालिकाना हक मिलेगा। पर्याप्त मजदूरी/पारिश्रमिक के साथ रोज़गार पाना नागरिक का अधिकार

होगा। जमीन, कारखानों, खदानों, परिवहन, कार्यालयों, स्कूल समेत सभी जगहों पर काम करने वालों के बेहतर जीवन स्तर के लिए क़ानून द्वारा न्यूनतम वेतन तय किया जाएगा। कोई भी व्यक्ति दिन में आठ घंटे, सप्ताह में 6 दिन से ज्यादा काम करने के लिए बाध्य नहीं होगा। साल में एक माह के लिए पूरे वेतन के साथ अवकाश मिलेगा। महिलाओं को पूरे वेतन के साथ तीन माह का प्रसूति लाभ मिलेगा।

नवम्बर 1944 में गैर-दलीय सम्मेलन (नॉन-पार्टी कांफ्रेंस) में भारत की तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक-संवैधानिक परिस्थितियों में अल्पसंख्यकों की स्थिति और उनके लिए व्यवस्था बनाने के मकसद से तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक समिति बनायी गयी। सप्रू समिति ने भी मौलिक/बुनियादी अधिकारों का उल्लेख किया था। इसमें शामिल थे:

व्यक्ति की स्वतंत्रता

प्रेस और संगठन की स्वतंत्रता

हर आधार पर नागरिकों की (जाति, लिंग, वंश, रंग, जन्म) समानता

धर्म की पूर्ण स्वतंत्रता और सहिष्णुता

सभी समुदायों की भाषा और संस्कृति को संरक्षण

संविधान निर्माण की पहल से पहले ही डॉ. अम्बेडकर ने 1945 में वंचित तबकों, ख़ास तौर पर अनुसूचित जातियों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए राज्य और अल्पसंख्यक (स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज) शीर्षक से दस्तावेज तैयार किया था।

उन्होंने इसमें लिखा कि 'राज्य कोई ऐसा क़ानून नहीं बनायेगा, जो नागरिकों के अधिकारों को सीमित करता हो। सभी नागरिक क़ानून के सामने समान हैं। हर तरह की छुआछूत और अस्पृश्यता को निष्प्रभावी माना जाएगा। बंधुआ और जबरिया मजदूरी करवाना अपराध होगा, हर व्यक्ति को मतदान का अधिकार

होगा, ऐसा कोई भी क़ानून नहीं बनाया जाएगा, जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित होती हो। सभी को अपने धर्म में विश्वास करने और अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन की स्वतंत्रता होगी। राज्य किसी धर्म को राजकीय धर्म के रूप में मान्यता नहीं देगा।'

उन्होंने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का विकल्प भी प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि मौजूदा स्वरूप और स्वभाव का समाज मौलिक अधिकारों को लागू नहीं होने देगा। अत: मजबूत न्यायिक व्यवस्था जरूरी है। इसके लिए उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय, संपत्ति के पंजीकरण/अनुबंध के प्रावधानों का उल्लेख किया।

मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व: प्रारंभिक रूप रेखा

सन 1946 में बी.एन. राऊ ने संविधान सभा की कार्यवाही शुरू होने से पहले ही नीति निदेशक तत्वों और मौलिक अधिकारों पर प्रारंभिक रूपरेखा तैयार की थी। उनका मानना था कि राज्य वैश्विक शांति और सुरक्षा को प्रोत्साहित करेगा, इसके लिए युद्धों की समाप्ति हेतु राष्ट्रीय नीति का पालन करेगा और देश में अंदरूनी शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए साम्प्रदायिक हिंसा के सभी कारणों को खत्म करेगा।

नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत उन्होंने लिखा कि 'राज्य सभी नागरिकों को काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार और मुफ्त–अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, बीमारी, वृद्धावस्था और विकलांगता प्रभावित लोगों को संरक्षा, विश्राम और मनोरंजन का अधिकार, राज्य अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को विशेष सहायता प्रदान करेगा और उनके शैक्षिक और आर्थिक हितों की सुरक्षा करते हुए उन्हें शोषण से संरक्षण प्रदान करने वाली व्यवस्था बनायेगा। राज्य की जिम्मेदारी होगी कि वह विविध समुदायों की भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षण प्रदान करे और राज्य लोगों के जीवन स्तर, पोषण के स्तर और लोक स्वास्थ्य की स्थिति

में बेहतरी को अपना प्राथमिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार करे।'

राज्य स्त्री और पुरुष कामगारों/श्रमिकों की क्षमता और स्वास्थ्य की स्थिति को बेहतर बनायेगा। यह सुनिश्चित करेगा कि बच्चों का शोषण न हो। किसी भी स्थिति में उनकी उम्र, लिंग और क्षमता के विरुद्ध किसी काम में न लगाया जाए।

भारत में मौलिक अधिकार: ऐतिहासिक संदर्भ

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में मानवाधिकारों का बहुत बड़े पैमाने पर उल्लंघन होता था। संविधान निर्माण की प्रक्रिया से जुड़े लोग भी कहीं न कहीं इसका शिकार हुए थे। यही वजह है कि वे इन अधिकारों को संविधान में शामिल करने के प्रति बहुत सकारात्मक नज़रिया रखते थे।

> एक और बात यह है कि भारतीय समाज कई धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषाई समूहों में बंटा हुआ है। ऐसे में लोगों के भीतर सुरक्षा का भाव उत्पन्न करने के लिए तथा कई बार मनमाना आचरण कर बैठने वाली सरकारों से बचाव मुहैया कराने के लिए उन्हें कुछ अधिकार देना जरूरी समझा गया। भारत में लोकतंत्र की स्थापना अवश्य की जा रही थी लेकिन हमारे यहां लोकतांत्रिक परंपराओं का अभाव था। ऐसे में यह खतरा भी था कि विधायिका के बहुसंख्यक सदस्य कहीं ऐसे कानून न बना दें जो आम लोगों या अल्पसंख्यक समूहों के खिलाफ हों। इस खतरे को दूर करने के लिए कुछ अधिकारों को सुनिश्चित करना आवश्यक था।

यही वजहें थीं कि संविधान सभा ने मौलिक अधिकारों को खुले दिल से स्वीकार किया। किसी ने यह नहीं कहा कि इन प्रावधानों को शामिल नहीं करना चाहिए बल्कि इन अधिकारों पर लगने वाले प्रतिबंध या सीमाओं को लेकर अवश्य बहस हुई। सभी का यह प्रयास था कि मौलिक अधिकारों को यथा संभव व्यापक बनाया जा सके।

मौलिक अधिकार भारत के संविधान में की गयी इस घोषणा का नैसर्गिक परिणाम हैं जिसमें कहा गया है कि भारत के लोगों ने भारत को एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्वीकार किया है जहां सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति और धर्म की स्वतंत्रता तथा अवसरों की समता आदि देने की बात कही गयी है।

भारत में मौलिक अधिकार न केवल कुछ बुनियादी नागरिक अधिकारों की गारंटी देते हैं बल्कि वे अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण करते हुए हर प्रकार के भेदभाव को खत्म करते हुए धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अधिकार भी सुनिश्चित करते हैं। इन अधिकारों को किसी भी प्रकार से सीमित करने का प्रयास वास्तव में संविधान के मूल ढांचे के साथ छेड़छाड़ करने के समान होगा।

> भारत के संविधान निर्माताओं ने अमेरिका के अनुभवों से सबक लेते हुए यह कल्पना की थी कि मौलिक अधिकारों का क्रियान्वयन करना आसान काम नहीं होगा। यही वजह है कि उन्होंने इनकी व्याख्या करने और प्रवर्तन की जिम्मेदारी न्यायालयों पर छोड़ दी।

मोटे तौर पर देखा जाए तो मौलिक अधिकार एक तरह से सरकार के हस्तक्षेप की सीमा भी तय करते हैं। इन अधिकारों की व्याख्या करते समय न्यायालयों के सामने एक जटिल चुनौती उत्पन्न होती है। वह यह कि व्यक्तियों के अधिकारों और राज्य या समाज के बीच उचित संतुलन या सामंजस्य कैसे हासिल किया जाए।

मौलिक अधिकारों की न्याय संगतता

देश में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी संविधान के अधीन हैं। देश में ऐसा कोई क़ानून बनाना संभव नहीं है जो नागरिकों को प्रदान किए गये मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो। हर कानून, हर अधिकार का इस्तेमाल संविधान द्वारा प्रदान किए गये दायरे के भीतर ही किया जा सकता है।

- संविधान का अनुच्छेद 13(1) साफ कहता है कि संविधान के पूर्व बने वे सभी कानून निष्प्रभावी होंगे जो मूल अधिकारों का किसी भी प्रकार उल्लंघन करते हैं।

- इसी प्रकार संविधान का अनुच्छेद 13(2) कहता है कि राज्य को ऐसा कोई क़ानून नहीं बनाना चाहिए जो नागरिकों से उनके मौलिक अधिकार छीनता है। अनुच्छेद यह भी कहता है कि यदि ऐसा कोई क़ानून बनता है तो वह निष्प्रभावी होगा।

- अनुच्छेद 13 न्यायपालिका खासकर सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक, अभिभावक और व्याख्याकार बनाता है। व्यक्तिगत क़ानूनों को मौलिक अधिकारों के आधार पर आकलित करने का काम न्यायालयों का है। यदि ऐसे क़ानून मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं तो न्यायालय उन्हें 'असंवैधानिक' घोषित करता है / कर सकता है। यह न्यायालयों की अत्यंत महत्वपूर्ण शक्ति है।

- सर्वोच्च न्यायालय ने भी अनुच्छेद 13(2) के तहत अपनी संरक्षक की भूमिका को और अधिक मजबूत बनाते हुए यह स्थापना दी कि 'न्यायिक समीक्षा' संविधान के आधारभूत गुणों में से एक है। इसका अर्थ यह हुआ कि भविष्य में कोई संविधान संशोधन करके भी न्यायिक समीक्षा के अधिकार को सीमित नहीं किया जा सकता है और न ही उसे किसी प्रकार की चुनौती दी जा सकती है।

मूल अधिकारों की न्याय संगतता पर न्यायिक टिप्पणियां

मिनर्वा मिल्स मामले में तत्कालीन **मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़** ने कहा था,

> 'यह न्यायाधीशों का काम है कि वे किसी कानून की वैधता का निर्धारण करें। यदि उनके पास यह अधिकार नहीं होगा तो आम नागरिकों को दिए गये मौलिक अधिकार केवल सजावटी और दिखावटी अधिकार बनकर रह जाएंगे क्योंकि बिना उपचारों के अधिकार पानी पर लिखी लिखाई की तरह बेमानी होंगे। तब हमारा नियंत्रण वाला संविधान बेलगाम हो जाएगा।'

केशवानंद भारती मामले में **न्यायमूर्ति खन्ना** ने कहा था,

> 'जब तक मौलिक अधिकार बरकरार हैं और संविधान का हिस्सा हैं, तब तक न्यायिक समीक्षा के अधिकार का भी इस्तेमाल करना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन अधिकारों के अधीन मिलने वाली गारंटी का उल्लंघन न हो।'

एल. चंद्र कुमार बनाम भारत मामले में **मुख्य न्यायाधीश अहमदी** ने सात न्यायाधीशों की पीठ की ओर से कहा,

> 'सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को संविधान को कायम रखने का दायित्व सौंपा गया है और इसलिए हमें इसकी व्याख्या करने का अधिकार भी मिला है। यह उन्हें ही सुनिश्चित करना है कि संविधान में सोचा गया शक्ति संतुलन बरकरार रखा जाए और विधायिका तथा कार्यपालिका अपने काम को अंजाम देते हुए संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण न करें। ऐसे में हम यह कहते हैं कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को मिला विधायी कामों की न्यायिक समीक्षा का अधिकार संविधान का अभिन्न और अनिवार्य अंग है तथा बुनियादी ढांचे का हिस्सा है। ऐसे में उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के किसी कानून की संवैधानिक वैधता बरकरार रखने को कभी नकारा नहीं जा सकता है।'

मौलिक अधिकारों का लक्ष्य

सोलह मई 1946 को कैबिनेट मिशन के माध्यम से जो योजना स्वीकार की गयी, उसमें मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यक समुदायों की सुरक्षा, कबाइली और पृथक क्षेत्रों की प्रशासन व्यवस्था, संघ व्यवस्था, प्रांतीय व्यवस्था का खाका बनाने के लिए एक परामर्श समिति बनाने की बात कही गयी थी। जब 9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई तो तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों (मुस्लिम लीग की सभा में अनुपस्थिति) के कारण से परामर्श समिति के गठन की कार्यवाही एक माह तक मुल्तवी करने पर सहमति बनी।

> इसी बीच 13 दिसंबर 1946 को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत के संविधान का 'लक्ष्य संबंधी प्रस्ताव' संविधान सभा के सामने पेश किया। भारतीय स्वतंत्रता के घोषणा पत्र के बिंदु क्रमांक 5 में कहा गया था, 'भारत के भावी शासन के लिए एक विधान बनाया जाएगा, जिसमें सभी लोगों (जनता) को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति और सुविधा की तथा मानवीय समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों को प्रकट करने की, विश्वास और धर्म की, ईश्वरोपासना की, काम-धंधे की, संघ बनाने व काम करने की स्वतंत्रता के अधिकार होंगे और माने जायेंगे।'

बिंदु क्रमांक 6 में कहा गया, 'सभी अल्पसंख्यकों के लिए, पिछड़ों, कबाइली प्रदेशों के लिए तथा दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए काफी संरक्षण विधि रहेगी।'

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने 17 दिसंबर 1946 को कहा था, 'प्रस्ताव में उल्लिखित मौलिक अधिकारों को भी क़ानून और सदाचार के अधीन रख दिया

गया है, निश्चय ही क़ानून और सदाचार क्या हैं, इस बात का निर्णय जमाने का शासन प्रबंध (कार्यपालिका) करेगा, किसी प्रबंध का एक फैसला हो सकता है और दूसरे का दूसरा। हम निश्चित रूप से यह नहीं जानते कि इन मौलिक अधिकारों की स्थिति क्या होगी, अगर ये शासन प्रबंध की मर्जी पर छोड़ दिए जाते हैं। प्रस्ताव में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय की व्यवस्था भी रखी गयी है। यदि प्रस्ताव में कोई भी वास्तविकता है, इसमें सच्चाई है और इसकी सच्चाई पर मुझे ज़रा भी शक नहीं है क्योंकि उसे माननीय पंडित जवाहर लाल नेहरू ने प्रस्तुत किया है। तो मैं यह उम्मीद करता हूं कि इसमें कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए थी, जिसमें राज्य के लिए यह संभव हो जाता कि वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान कर सकता है। देश में उद्योग धंधों का और भूमि का राष्ट्रीयकरण किया जाएगा। मेरी समझ में नहीं आता कि जब तक देश की अर्थ नीति समाजवादी नहीं होती, किसी भी भावी हुकूमत के लिए यह कैसे संभव होगा कि वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान कर सके।' डॉ. अम्बेडकर ने मौलिक अधिकारों पर नरम रुख अपनाया और बहुत से महत्वपूर्ण अधिकारों को न्याय न बना कर, नीति निदेशक तत्व बना दिया।

तीखी बहस और निंदा

संविधान सभा में इस विषय पर व्यापक बहस हुई। मौलिक अधिकार समिति ने अपने प्रस्ताव में लिखा कि 'अस्पृश्यता चाहे किसी भी रूप में हो, समाप्त की जाती है, इसका किसी भी रूप में व्यवहार या समर्थन करना अपराध माना जाएगा।' इस पर प्रमथ रंजन ठाकुर ने कहा कि 'मैं नहीं समझता कि बिना वर्ण व्यवस्था को हटाये आप अस्पृश्यता को कैसे हटा सकते हैं? अस्पृश्यता कुछ और नहीं है, यह तो वर्ण–व्यवस्था रूप रोग का लक्षण है। जब तक वर्ण व्यवस्था को हम बिलकुल खत्म नहीं कर देते, अस्पृश्यता की समस्या का समाधान ढूंढना एक व्यर्थ और बेतुकी बात है।'

आर्थिक अधिकारों (रोज़गार, समान वेतन, जीवन स्तर में बेहतरी लाना आदि) को नीति निदेशक तत्वों में शामिल किये जाने पर डॉ. अम्बेडकर ने कहा, 'आर्थिक अधिकारों को भी मौलिक अधिकार में शामिल किया जाना चाहिए ताकि उन्हें न्याय अधिकार माना जा सके।'

> मौलिक अधिकारों की व्याख्या संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 13 में थी। सदस्यों ने कहा कि इन अधिकारों पर इतने प्रतिबंध हैं कि मौलिक अधिकारों का कोई मूल्य ही नहीं बचा। इसकी निंदा करते हुए इसे एक प्रकार का छल कहा गया। संविधान के मसौदे में शामिल मौलिक अधिकारों पर आलोचनाओं का जवाब देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा, 'आलोचकों की राय में मौलिक अधिकार तब तक मौलिक अधिकार नहीं है, जब तक कि वे सर्वथा सम्पूर्ण प्रतिबंध शून्य न हों.....यह कहना गलत है कि मौलिक अधिकार सर्वथा–हमेशा सम्पूर्ण प्रतिबंध शून्य होते हैं। और अन्य अधिकार अबाध नहीं होते हैं। इन दोनों का वास्तविक अंतर यह है कि मौलिक अधिकार क़ानून की देन हैं, जबकि अन्य अधिकार विभिन्न दलों के पारस्परिक समझौते के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। चूंकि मौलिक अधिकार राज्य की देन हैं, इसलिए राज्य उनके संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं रख सकता, ऐसा अर्थ लगाना भूल है।'

बहरहाल संविधान सभा में हर मौलिक अधिकार पर विभिन्न नज़रियों से तीखी बहस हुई। इसमें सबसे ज्यादा बहस इस बात पर हुई कि कौन से अधिकार मौलिक अधिकार की श्रेणी में आयेंगे और कौन से अधिकार नीति निदेशक तत्वों में शामिल होंगे (यानी जिनका प्रावधान तो है पर राज्य की बाध्यता नहीं है)।

भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल करते हुए हर अधिकार में अंतर्निहित विरोधभासों पर भी बहस हुई। मसलन वंचित समुदायों के बच्चों के लिए पृथक स्कूलों की मांग पर डॉ. बी.आर अम्बेडकर ने कहा कि हम में से कौन यह देखना चाहेगा कि गांव या बस्ती में अलग-अलग समुदायों के बच्चों के लिए अलग अलग स्कूल हों? इसी तरह धर्म पालन की स्वतंत्रता पर यह बात भी उठी कि यदि कोई धर्म पालन का मतलब यह लगाए कि 'सती प्रथा, देवदासी या घूंघट रखने का व्यवहार रखना भी धार्मिक स्वतंत्रता के तहत आता है, तब क्या किया जाएगा?' इस पर मौलिक अधिकार उप-समिति ने स्पष्ट किया था कि धर्म के पालन की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि राज्य सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए क़ानून नहीं बना सकता है।

इसी तरह समानता के अधिकार में अंतर्निहित व्यवहारिक विरोधाभासों पर भी बहस जारी रही। अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह सवाल उठाया कि यह अधिकार भी सामाजिक सुधार में बाधा बन सकता है क्योंकि इसके (समानता के) आधार पर कारखानों में काम करने वाली महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्थाएं/प्रावधान प्रस्तुत करने वाले कानूनों को चुनौती देकर महिलाओं को मिलने वाले विशेष संरक्षण को खत्म किया जा सकेगा।

इसी तरह यह भी बहस हुई कि संगठन बनाने, सभा करने, अस्त्र धारण करने और पत्राचार की गोपनीयता के मौलिक अधिकार भारत में रहने वाले हर व्यक्ति के लिए होंगे या केवल भारतीय नागरिकों के लिए?

मौलिक अधिकार

ठोस बहस और वाद-विवादों के बाद भारतीय संविधान में जिन अधिकारों को व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के रूप में शामिल किया गया, उन्हें इस तरह के सैद्धांतिक वर्गीकरण से समझा जा सकता है:

- राज्य ऐसा कोई नियन-क़ानून नहीं बनाएगा, संविधान में नागरिकों को दिए गये मौलिक अधिकारों के छीनते या कमतर करते हों (अनुच्छेद 13)
- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)
- स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24)
- धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)
- सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

- समानता के अधिकार में क़ानून के समक्ष समानता, धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव न किया जाना और रोजगार के समान अवसर शामिल हैं।
- स्वतंत्रता के अधिकार में भाषा और विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता, जमा होने या संघ बनाने, आने-जाने, रहने या जीविकोपार्जन एवं व्यवसाय करने की स्वतंत्रता शामिल है।
- शोषण के विरुद्ध अधिकार में बेगार, बाल श्रम और मनुष्यों के व्यापार का निषेध किया गया।
- आस्था और अंत:करण की स्वतंत्रता, किसी भी धर्म का अनुयाई बनना, उस पर विश्वास और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता भी इसमें शामिल है।
- सभी वर्गों को अपनी संस्कृति सुरक्षित रखने, भाषा या लिपि को बचाये रखने और अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं चलाने का अधिकार भी मौलिक अधिकारों में दिया गया।

इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था की गयी। मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए ये संवैधानिक उपचार अनुच्छेद 32 और 226 में हैं। इस अनुच्छेद के तहत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के बारे में सरकार को निर्देश या आदेश दे सकता है।

संविधान के मूल आधार और न्यायिक व्यवस्था

संविधान निर्माण के बाद से ही यह आशंका जताई जाती रही है कि कहीं संविधान के मूल सिद्धांतों और आधारों को कमज़ोर न किया जाए। गोलकनाथ केस में उच्चतम न्यायालय के 11 न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 368 के मुताबिक़ संविधान के किसी भी प्रावधान में संशोधन किया जा सकता है। परंतु केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय की ही 13 सदस्यों की पीठ ने स्पष्ट किया कि संविधान के मूल आधारों और उससे जुड़े अंगों में संशोधन नहीं किया जा सकता है।

संविधान के मूल आधार

संविधान के मूल आधारों में शमिल हैं: संविधान की सर्वोच्चता, क़ानून का शासन, संविधान की उद्देशिका में घोषित उद्देश्य, पंथनिरपेक्षता, व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता, समता का सिद्धांत, संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, न्याय का वास्तव में सुलभ होना, निष्पक्ष निर्वाचन आदि।

क्यों जरूरी हैं मूल अधिकार ?

मौलिक अधिकार संविधान के चरित्र को एक गरिमा प्रदान करते हैं। भारत में मौलिक अधिकारों पर अक्सर बहस होती रही है। राजनीतिक प्रक्रिया में यह माना जाने लगा है कि नागरिकों के मौलिक अधिकार की अवधारणा भारत की अस्मिता, संस्कृति और राज्य व्यवस्था के खिलाफ हैं। इन पर विमर्श या संघर्ष 'राज्य व्यवस्था' को उचित नहीं लगता परंतु बुनियादी रूप से मौलिक अधिकारों की सुरक्षा समाज और राज्य की जिम्मेदारी है। वास्तव में किसी व्यक्ति को गरिमामय जीवन जीने के लिए कुछ बुनियादी अधिकारों की आवश्यकता होती है। यही मौलिक अधिकार हैं।

संविधान और नीति निदेशक तत्व

देश को एक बेहतर व्यवस्था प्रदान करने के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की आवश्यकता थी। सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए मूल अधिकारों की व्यवस्था की गयी। परंतु आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था नीति निदेशक तत्वों के रूप में की गयी। नीति निदेशक तत्वों के मामले में राज्य को किसी तरह बाध्य नहीं किया गया। संविधान निर्माताओं का मानना था कि आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए समाज को संघर्ष करना चाहिए। समाज में राजनीतिक तार्किकता का बोध होना चाहिए। उनका मानना था कि जनता चुनावों के माध्यम से राजनीतिक दलों और सरकारों को नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए बाध्य करे; लेकिन आज़ादी के बाद राजनीतिक दलों ने सरकारों के साथ मिलकर समाज में राजनीतिक तार्किकता और नागरिकता का बोध विकसित नहीं होने दिया।

नीति निदेशक तत्वः अनिवार्य न होने का असर

नीति निदेशक तत्वों में भारत के आर्थिक ढांचे में बदलाव के लिए जरूरी बिंदु थे, लेकिन इन्हें अनिवार्य न बनाना चूक थी। इसमें शिक्षा के अधिकार का प्रावधान था, जिसे 10 वर्ष के बजाय 60 वर्ष में लागू किया गया। इसमें कहा गया कि पुरुषों और स्त्रियों, सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार होगा, स्त्रियों-पुरुषों के वेतन समान होंगे, आर्थिक व्यवस्था में धन-उत्पादन की सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण नहीं होगा, मजदूरों को निर्वाह के लिए ऐसी मजदूरी मिलेगी कि वे शिष्ट जीवन स्तर हासिल कर सकें। बच्चों का शोषण नहीं होगा, पोषाहार और जीवन स्तर को ऊंचा उठाया जाएगा और पर्यवरण का संरक्षण और संवर्धन किया जाएगा। इसके उलट भारत में पूंजी और संसाधनों का केन्द्रीकरण हुआ, खराब शिक्षा प्रणाली लागू हुई, पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया गया, भुखमरी और कुपोषण में वृद्धि हुई; क्योंकि सरकारें बाध्य नहीं रहीं!

निदेशक तत्वों के पीछे क़ानून का कोई बल न होने के कारण इनकी आलोचना की गयी। इस विषय में डॉ. अम्बेडकर ने कहा, 'विधान का मसविदा, जिस रूप में यह है, देश के शासन के लिए केवल एक व्यवस्था मात्र बना देता है। अधिकाररूढ़ (सरकार में कौन आयेगा?) कौन हो, इस बात का निर्णय जनता पर छोड़ दिया गया है। और ऐसा ही होना चाहिए, अगर प्रजातंत्र की कसौटी पर इस व्यवस्था को सही उतारना है। इस व्यवस्था में यह होगा कि चाहे जो भी अधिकाररूढ़ हो जाए, किन्तु विधान को लेकर वह मनमानी नहीं कर सकता। इसके प्रयोग में उसे इन आदेश पत्रों का, जिन्हें हमने निर्देशात्मक सिद्धांत कहा है, आदर करना ही होगा। वह उनकी उपेक्षा कर नहीं सकता। हो सकता है इनको भंग करने के लिए उसे किसी अदालत के सामने जवाब न देना पड़े, किन्तु चुनाव के समय निर्वाचकों/मतदाताओं के सामने उसे निश्चय की इसका जवाब देना होगा।'

यानी यदि चुनी हुई सरकारें नीति निर्देशक तत्वों/सिद्धांतों में शामिल विषयों पर अमल नहीं करेंगी, तो जनता आने वाले चुनावों में इसके आधार पर किसी भी सत्तारूढ़ दल को सरकार से बाहर कर सकेंगी। यही लोगों की लोकतांत्रिक ताकत और अधिकार होगा। हालांकि डॉ. अम्बेडकर का यह अनुमान गलत साबित हुआ कि भारत का समाज इतना तार्किक बनेगा।

संविधान सभा की बहस

के.टी. शाह ने कहा था, 'हम कह रहे हैं कि प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकार होगा और संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर राज्य ऐसे प्रयास करेगा कि 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा मिले; हम कह रहे हैं कि राज्य केवल प्रयत्न करेगा, यह भी यह अनिवार्य नहीं है। जब तक ये तत्व आदेशमूलक नहीं होंगे, तब तक ये लागू होंगे भी नहीं। हर नागरिक का यह अधिकार होना चाहिए कि वह राज्य को इन कर्तव्यों के प्रवर्तन के लिए बाध्य कर सके।'

कृष्ण चन्द्र शर्मा ने कहा, 'निदेशक सिद्धांतों के संदर्भ में मेरा सुझाव है कि हम एक ऐसा प्रावधान बनायें कि यदि (शासन द्वारा) कोई ऐसा क़ानून बनाया जाए, जो इन सिद्धांतों के प्रतिकूल हो, तो वह रद्द समझा जाए। लोग न्यायालय से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि वह जो कोई क़ानून लोकहित के प्रतिकूल है अथवा जो बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने का निषेध करता है अथवा जो लोगों को काम और सेवावृत्ति देने में बाधक है, उसे वह अमान्य घोषित कर दे।'

नजीरुद्दीन अहमद भी डॉ. अम्बेडकर से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा, 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये केवल पवित्र भावनायें मात्र हैं और ये अनिवार्य रूप से मान्य न होंगे...मेरे विचार से प्रत्येक वैधानिक सिद्धांत को अधिकार का रूप देना चाहिए। यदि कोई अधिकार है तो उसका हनन भयकृत्य माना जाता है और इससे सर्वज्ञात वाद कारण उत्पन्न होता है। अत: ऐसा कोई अधिकार हो ही नहीं सकता जिसके हनन होने से कोई वाद कारण पैदा न होता हो...यदि किसी सिद्धांत का विवरण आवश्यक है तो वह न्याय होना चाहिए, उसका न्यायालय द्वारा प्रवर्तन होना चाहिए।'

संविधान सभा में यह गहरी समझ थी कि यदि कोई भी अधिकार न्याय रूप में है, तो उसे क़ानून के माध्यम से लागू किये जाने की बाध्यता होना चाहिए, लेकिन नीति निदेशक तत्वों को अनिवार्य नहीं बनाया जा सका।

भारतीय संविधान के भाग चार में अनुच्छेद 37 से 51 तक नीति निदेशक तत्वों को स्थान दिया गया है।

अनुच्छेद 37 नीति निदेशक सिद्धांतों के काम के बारे में अवगत कराता है। इन सिद्धांतों का लक्ष्य लोगों के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना और भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करना है। इनमें से कुछ सिद्धांत समाजवाद से प्रेरित हैं, कुछ गांधीवाद से तो अन्य उदारवादी सिद्धांत हैं।

इन सिद्धांतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित कर आय, सुविधाओं और अवसरों में असमानता को दूर करना और सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और संरक्षित करना।
- सभी के लिए आजीविका के अवसर बनाना और धन संग्रह को रोकना। पुरुषों और महिलाओं को समान काम का समान वेतन। श्रमिकों को स्वास्थ्य सुरक्षा मुहैया कराना।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार। लोगों को पोषण मुहैया कराना और उनका जीवन स्तर सुधारना।
- भारत के सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करना।
- पर्यावरण की रक्षा और सुधार तथा वन्यजीवों को समुचित रक्षा प्रदान करना आदि...।

नीति निदेशक तत्व

राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

अनुच्छेद	ब्योरा
38	सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर जन कल्याण को बढ़ावा देना।
39	आजीविका के समुचित साधन, संसाधनों का समान वितरण, उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण रोकना, समान काम का समान वेतन, श्रमिकों और बच्चों का स्वास्थ्य आदि।
40	ग्राम पंचायतों का संगठन और सशक्तीकरण।
41	काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सार्वजनिक सहायता का अधिकार।
42	काम की उचित और मानवीय परिस्थितियां, मातृत्व राहत।

43	श्रमिकों के लिए जीवन निर्वाह वेतन, बेहतर जीवन स्तर।
44	देश भर में नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता।
45	छह वर्ष की आयु तक बच्चों को प्रारंभिक देखभाल और शिक्षा (2002 में हुए 86वें संशोधन के बाद प्रारंभिक शिक्षा अनुच्छेद 21ए के तहत मौलिक अधिकार घोषित)।
46	अजा, अजजा और समाज के अन्य वंचित वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों का ध्यान रखना।
47	सार्वजनिक स्वास्थ्य और लोगों के जीवन स्तर में सुधार।
48	दुधारू और माल ढोने वाले पशुओं के वध पर रोक और उनकी नस्ल में सुधार।
49	राष्ट्रीय महत्व के ऐतिहासिक स्मारकों का संरक्षण और रखरखाव।
50	सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग रखना।
51	अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देना, अंतरराष्ट्रीय क़ानून और संधियों का सम्मान तथा अंतरराष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता के माध्यम से निपटाना।

मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों में अंतर

मौलिक अधिकार	नीति निदेशक तत्व
राज्य की ओर से गारंटी प्राप्त अधिकार	राज्य के मार्गदर्शक सिद्धांतों का एक समूह
राज्य इनका उल्लंघन नहीं कर सकता है	राज्य की ओर से सकारात्मक कार्रवाई अपेक्षित
मौलिक अधिकार न मिलने पर न्यायालय की शरण ली जा सकती है	राज्य को केवल सुझाव दिया जा सकता है कि वह इसे लागू करे, अदालत नहीं जा सकते
व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता पर जोर	संपूर्ण राज्य के कल्याण का नजरिया
राजनीतिक और सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक	आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक

संविधान संवाद पुस्तिका शृंखला

- संविधान और हम
- भारतीय संविधान की विकास गाथा
- जीवन में संविधान
- भारत का संविधान – महत्वपूर्ण तथ्य और तर्क
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि
- संवैधानिक व्यवस्था : एक परिचय
- संविधान की रचना प्रक्रिया
- संविधान सभा में स्वतंत्रता का घोषणा पत्र
- संविधान की उद्देशिका से परिचय
- भारतीय संविधान
  मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व
- भारतीय संविधान और रियासतें
- संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता
- भारत के संविधान के रोचक किस्से
- भारत का राष्ट्रीय ध्वज : तिरंगे की कहानी
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और भारतीय संविधान
- गांधी का संविधान
- संविधान और आदिवासी
- स्वाधीनता, स्वतंत्रता और संविधान
- संविधान और समाजवाद तथा आर्थिक समानता
- संविधान और सांप्रदायिकता
- संविधान और चुनाव प्रणाली
- संविधान और न्यायपालिका
- संविधान और अल्पसंख्यक
- इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब
- बंधुता : अर्थ और व्यवहार

पुस्तकें पाने के लिए संपर्क करें –
vikassamvadprakashan@gmail.com / 0755 - 4252789

'संविधान संवाद' शृंखला क्यों?

जब हम किसी विषय के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन जब हम उसके बारे में जानना शुरू करते हैं तो फिर हर पहलू को टटोलने, जानने और समझने की आवश्यकता और ललक होती है।

भारतीय संविधान से जुड़ी तमाम जानकारियों को जानने की उत्कंठा के कारण ही 'विकास संवाद' ने 'संविधान संवाद शृंखला' आरंभ की है। इसका उद्देश्य संविधान की विकास गाथा को जानना, उसके उद्देश्य को समझना तथा तय लक्ष्यों की प्राप्ति में हम नागरिकों के कर्तव्यों के बोध की पहल करना है।

यह संवैधानिक मूल्यों के आत्मबोध से उन्हें आत्मसात करने तक की यात्रा है।

विकास संवाद

Azim Premji Foundation